एकादश अध्याय

वैशेषिक दर्शन

१. भूमिका

सांख्य के बाद वैशेषिक दर्शन सर्वाधिक प्राचीन प्रतीत होता है। यह जैन तथा बौद्धमत से प्राचीन है, तथा न्याय से तो प्राचीन है ही। 'विशेष' नामक पदार्थ का विवेचन करने के कारण इसका नाम वैशेषिक रखा गया। यह बहुत्ववादी वस्तुवाद है जो वस्तुओं के भेद पर बल देता है। इसके प्रवर्तक आचार्य महर्षि कणाद हैं जिन्हें कणभुक्, काश्यप और औलूक भी कहा जाता है। कटाई के बाद खेतों में जो बचे हुये अनाज के कण बिखरे पड़े रहते हैं उन्हीं कणों को बीन कर भोजनार्थ प्रयोग करने के कारण इन महर्षि का नाम कणाद या कणभुक् हो गया। पाणिनीय व्याकरण और वैशेषिक दर्शन को सर्वशास्त्रोपकारक माना जाता है।[1] व्याकरण शब्द-निर्णय के लिये तथा वैशेषिक पदार्थ-निर्णय के लिये सक्षम माने गये हैं। कणादरचित वैशेषिक-सूत्र पर प्रशस्तपाद का 'पदार्थधर्मसङ्ग्रह' नामक भाष्य है जो वैशेषिक दर्शन पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उदयन की 'किरणावली' तथा श्रीधर की 'न्यायकन्दली' इस पर प्रसिद्ध टीकायें हैं। आगे चलकर न्याय ने वैशेषिक की तत्त्वमीमांसा स्वीकार कर ली तथा अपनी ज्ञानमीमांसा को विकसित किया और ये दोनों न्याय वैशेषिक के नाम से संयुक्त दर्शन बन गये।

२. पदार्थ

पदार्थ-निरूपण एवं परमाणुकारणवाद की स्थापना, ये दो वैशेषिक दर्शन के प्रमुख विषय हैं। यहाँ हम वैशेषिकसम्मत पदार्थ-निरूपण प्रस्तुत कर रहे हैं। पदार्थ का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है 'पद का अर्थ' अर्थात् किसी पद द्वारा सङ्केतित वस्तु। पदार्थ का सामान्य लक्षण है 'अभिधेयत्व' अर्थात् नाम से अभिहित होने की योग्यता वाली वस्तु और 'ज्ञेयत्व' अर्थात् ज्ञान का विषय बनने की योग्यतावाली वस्तु। पदार्थ वह है जो अभिधेय और ज्ञेय हो। कोई भी वस्तु जिसे नाम से अभिहित किया जा सके और जिसे ज्ञान का विषय बनाया जा सके 'पदार्थ' कहलाती है। अरस्तू के अनुसार 'पदार्थ' तर्कशास्त्र के विधेय हैं। कान्ट के अनुसार धारणायें बुद्धि-विकल्प रूपी साँचे हैं जिनमें ढलकर वस्तुयें 'ज्ञेय' बनती हैं। हेगल के अनुसार धारणायें ज्ञान के विकास-क्रम की विविध अवस्थायें हैं। वैशेषिक-पदार्थ इन सबसे भिन्न है। वैशेषिक ने ज्ञेय पदार्थों या वस्तुओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, उनमें समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया। वैशेषिक भेदमूलक बहुत्ववादी वस्तुवाद है।

---

१. काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्।

Scanned with CamScanner

वैशेषिक-सूत्र में छह भाव-पदार्थों के ही नाम परिगणित हैं। कणाद ने अभाव का भी वर्णन किया है, किन्तु उसे पदार्थ के रूप में स्वीकार नहीं किया। बाद के वैशेषिकों ने अभाव को भी पदार्थ रूप में मान्यता दे दी। पदार्थ दो प्रकार के हैं—भावात्मक और अभावात्मक। भावात्मक पदार्थ छह हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। अभाव पदार्थ चार प्रकार का है—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव।

३. द्रव्य

द्रव्य वह है जो गुण तथा कर्म का आश्रय हो और अपने कार्य का समवायी कारण हो।[1] द्रव्य की स्वतन्त्र सत्ता है। वह गुण और कर्म का आश्रयभूत तत्त्व है। वह अपने कार्यों का समवायी या उपादान कारण है। द्रव्य स्वरूपतः नित्य, स्वतन्त्र एवं विशेष-युक्त होता है और या तो विभु होता है या अणुरूप। नित्य द्रव्यों से बने अवयविद्रव्य अनित्य और उत्पादविनाशशील होते हैं। द्रव्य नौ प्रकार के हैं जिनमें जड़ और चेतन द्रव्य सम्मिलित हैं। वैशेषिक दर्शन वस्तुवादी है, जड़वादी या भौतिकवादी नहीं, क्योंकि यह चेतन आत्मतत्त्व की स्वतन्त्र सत्ता मानता है। नौ द्रव्य ये हैं—पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश नामक पञ्चमहाभूत तथा काल, दिक्, आत्मा और मन।

पृथिवी, जल, तेज और वायु अपने मूल रूप में नित्य परमाणुरूप हैं। प्रत्येक महाभूत के परमाणु अनेक हैं। इन परमाणुओं के संयोग से स्थूल भौतिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं जो इनके कार्यभूत अनित्य सावयव द्रव्य हैं। यह इन महाभूतों का स्थूल या मूर्त रूप है। पाँचवाँ महाभूत आकाश है जो परमाणुरूप नहीं है, किन्तु विभु या व्यापक है और एक है। पाँचों महाभूत भौतिक द्रव्य हैं। प्रत्येक का अपना विशेष गुण है। आकाश का गुण शब्द है। वायु का गुण स्पर्श है। तेज का गुण रूप है किन्तु उसमें स्पर्श भी रहता है। जल का गुण रस है, किन्तु उसमें रूप और स्पर्श भी रहते हैं। पृथिवी का गुण गन्ध है, किन्तु उसमें रस, रूप और स्पर्श भी रहते हैं। इन पाँचों गुणों का ग्रहण अलग-अलग पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है—चक्षु से रूप का, श्रोत्र से शब्द का, रसना से रस का, त्वक् से स्पर्श का और घ्राण से गन्ध का ग्रहण होता है क्योंकि चक्षुरिन्द्रिय तेजोभूत से, श्रोत्रेन्द्रिय आकाश से, रसनेन्द्रिय जल से, त्वगिन्द्रिय वायु से और घ्राणेन्द्रिय पृथिवी महाभूत से निर्मित होती है। काल और दिक्, आकाश के समान, एक-एक हैं, नित्य हैं और विभु हैं। वस्तुतः ये अखण्ड हैं, किन्तु व्यवहार में इनके खण्डों की कल्पना कर ली जाती है। काल के कारण भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञान होता है, ज्येष्ठ और कनिष्ठ का व्यवहार होता है तथा वस्तुओं की एककालता, भिन्नकालता, दीर्घकालता तथा अल्पकालता सिद्ध होती है। दिक् भी एक और नित्य है तथा उपाधि भेद से अनेक है। यह पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, तथा ऊपर-नीचे, यहाँ-वहाँ, दूर-पास आदि व्यवहार का कारण है। आत्मा अनेक हैं और प्रत्येक नित्य, स्वतन्त्र और विभु है। आत्मद्रव्य ज्ञान-गुण का आश्रय है। आत्मा ज्ञान-स्वरूप नहीं है, अपितु ज्ञान नामक गुण का आश्रयभूत द्रव्य है। ज्ञान आत्मा का आगन्तुक धर्म है। आत्मा के अन्य गुणों में इच्छा, सुख, दुःख, यत्न आदि हैं। मन अन्तरिन्द्रिय है। यह भी नित्य द्रव्य है और अणु

---

१. क्रियागुणवत् समवायिकारणं द्रव्यम्। द्रष्टव्य, वैशेषिकसूत्र १, १, १५

Scanned with CamScanner

रूप है तथा अनेक हैं। अणुरूप होने पर भी यह, पृथिवी आदि चार महाभूतों के परमाणुओं के समान, संघात का निर्माण नहीं करता। प्रत्येक बद्ध आत्मा के साथ एक मन संयुक्त रहता है जिसके द्वारा उसे विषयों का ज्ञान होता है। अणुरूप होने से मन एक बार में एक ही इन्द्रिय या एक ही मनोभाव से सम्पर्क कर सकता है। बाह्य प्रत्यक्षज्ञान में पहले इन्द्रिय और पदार्थ का सन्निकर्ष होता है और फिर मन तथा इन्द्रिय का सन्निकर्ष होता है; मनोभाव के अनुभव में मन का मनोभाव से सीधा सम्पर्क होता है। मन का प्रत्यक्ष नहीं होता। उसके कार्यों से उसका अनुमान किया जाता है।

पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश पञ्चमहाभूत हैं। ये और मन भौतिक हैं। पृथिवी, जल, तेज और वायु तथा मन अणुरूप हैं। भूत-परमाणु संघात बनाते हैं, मन-परमाणु अकेला ही रहता है, अन्य मनों के साथ संहत नहीं होता। आत्मा अभौतिक और ज्ञानाश्रय है। काल और दिक् द्रव्यरूप हैं, व्यक्ति-गत नहीं हैं। आकाश, दिक्, काल और आत्मा विभु और नित्य हैं। परमाणु, मन और आत्मा प्रत्येक अनेक हैं। आकाश, दिक् और काल एक-एक हैं।

४. गुण

गुण द्रव्य के समान स्वतन्त्र पदार्थ नहीं हैं। गुण द्रव्य पर आश्रित रहते हैं। गुण के गुण या कर्म नहीं होते। अभिधेय और ज्ञेय होने के कारण गुण को पदार्थ माना गया है। गुण के अन्तर्गत भौतिक एवं मानस दोनों प्रकार के गुण आ जाते हैं। कुछ गुण द्रव्य के आवश्यक धर्म होते हैं। कणाद ने सत्रह गुणों का उल्लेख किया है जिनमें प्रशस्तपाद ने सात और जोड़ कर गुणों की संख्या चौबीस कर दी है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, संयोग, विभाग, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न कुछ प्रमुख गुण हैं।

५. कर्म

गुण के समान कर्म भी द्रव्य पर आश्रित रहने वाला धर्म है। यह गुण से भिन्न है। यह वस्तुओं के संयोग एवं विभाग का कारण है। कर्म मूर्त द्रव्यों में ही रहता है, विभु द्रव्यों में नहीं। कर्म पाँच प्रकार के होते हैं—उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना), अपक्षेपण (नीचे फेंकना), आकुञ्चन (सिकोड़ना), प्रसारण (फैलाना), और गमन (चलना)।

६. सामान्य

सामान्य को जाति भी कहते हैं। सामान्य को नित्य, एक और अनेकानुगत माना गया है।[1] अनेकानुगत का अर्थ है कि किसी वर्ग के सभी व्यक्तियों में अनुगत रहना अर्थात् समवाय सम्बन्ध से विद्यमान रहना। अलग-अलग मनुष्य व्यक्ति हैं, किन्तु सभी मनुष्यों में अनुगत रहनेवाला 'मनुष्यत्व' सामान्य है। वैशेषिक कट्टर वस्तुवाद है अतः वह सामान्य की वस्तु-गत सत्ता स्वीकार करता है। सामान्य किसी वर्ग के सभी व्यक्तियों में पाये जाने वाले सामान्य

---

१. नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम्।

Scanned with CamScanner

धर्मों की कल्पनामात्र नहीं है; यह मानस धर्म नहीं है, अपितु इसकी वस्तुतः सत्ता है। सामान्य के कारण ही एक व्यक्ति अपनी जाति का सदस्य बनता है। मनुष्यत्व ही मनुष्य को मनुष्य जाति का सदस्य बनाता है। सबसे बड़ा सामान्य या पर-सामान्य सत्ता-सामान्य है क्योंकि यह सबसे अधिक व्यक्तियों में रहने वाली जाति है। सामान्य एक है, यद्यपि जिन व्यक्तियों में यह रहता है वे अनेक हैं। सामान्य नित्य है, यद्यपि जिन व्यक्तियों में यह रहता है वे अनित्य तथा उत्पादविनाशशील हैं। एक वर्ग के व्यक्तियों में एक ही सामान्य रहता है। सामान्य द्रव्य, गुण और कर्म में रहता है।[1] एक सामान्य दूसरे सामान्य में नहीं रह सकता, अन्यथा एक व्यक्ति एक साथ ही मनुष्य, घोड़ा या बैल बन सकता है। जो अनेकानुगत न हो, अपितु एक ही व्यक्ति में रहे वह सामान्य नहीं हो सकता जैसे आकाश में ही रहनेवाला आकाशत्व सामान्य नहीं है। संयोग जिन वस्तुओं को जोड़ता है उन सब में एक साथ रहता है, किन्तु वह सामान्य नहीं है क्योंकि वह नित्य नहीं है। अभाव नित्य है और कई वस्तुओं का हो सकता है, किन्तु वह सामान्य नहीं है क्योंकि वह उन वस्तुओं में समवाय सम्बन्ध से नहीं रहता।

न्यायवैशेषिक वस्तुवाद सामान्य की वस्तु-गत सत्ता स्वीकार करता है। बौद्ध अपोहवाद सामान्य को कल्पनामात्र या नाममात्र मानता है और उसकी कोई सत्ता नहीं मानता। वेदान्त सामान्य को कल्पनामात्र तो नहीं मानता, किन्तु व्यक्तियों के अतिरिक्त और उनसे भिन्न सामान्य की सत्ता नहीं मानता। सामान्य के विषय में ये तीन मत सम्भव हैं।

७. विशेष

जगत् के जितने भी दृश्य पदार्थ हैं चाहे भौतिक हों या चेतन, वे सब संघात रूप हैं। इन अलग-अलग पदार्थों को 'व्यक्ति' कहा जाता है। ये 'विशेष' नहीं हैं। यह ध्यान देने की बात है कि वैशेषिक दर्शन में 'विशेष' नामक पदार्थ एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जागतिक पदार्थों में भेद उनके अवयव-संस्थान के भेद से, उनके गुण-भेद से और कर्म-भेद से स्पष्ट प्रतीत होता है। किन्तु जिन नित्य द्रव्यों में किसी प्रकार भेद करना सम्भव नहीं हो उन द्रव्यों में भेद करने के लिये 'विशेष' नामक पदार्थ की कल्पना की गई है। पृथिवी, जल, तेज और वायु के परमाणुओं में परस्पर भेद उनके गुण-भेद के आधार पर किया जा सकता है, किन्तु पृथिवी का एक परमाणु पृथिवी के ही दूसरे परमाणु से किस प्रकार भिन्न है? इसी प्रकार जल, तेज और वायु का परमाणु उसी द्रव्य के अन्य परमाणु से किस प्रकार भिन्न है? एक मुक्त आत्मा दूसरे मुक्त आत्मा से और एक मन दूसरे मन से किस प्रकार भिन्न सिद्ध किया जा सकता है? अतः उन नित्य द्रव्यों में जो सर्वथा समान हैं और जिनमें संख्या के अतिरिक्त किसी प्रकार भेद नहीं किया जा सकता, भेद करने के लिये 'विशेष' स्वीकार किया गया है। प्रत्येक नित्य द्रव्य में, परमाणु, आत्मा और मन में, आकाश, दिक् और काल में, अपना 'विशेष' होता है जो उसे अन्य द्रव्यों से भिन्न करता है। नित्य द्रव्यों में रहने वाले ये विशेष भी नित्य होते हैं; नित्य द्रव्य अनन्त हैं, अतः उनके विशेष भी अनन्त हैं; एवं प्रत्येक विशेष स्वभावतः व्यावर्तक होता है अर्थात् एक नित्य द्रव्य

---

१. द्रव्यगुणकर्मवृत्ति।

Scanned with CamScanner

में रहने वाला विशेष उसे अन्य नित्य द्रव्यों से भिन्न करता है और एक विशेष दूसरे विशेष से स्वतः भिन्न होता है। यदि विशेष को स्वतोव्यावर्तक नहीं माना जाय तो अनवस्था दोष आ जायगा।[1]

८. समवाय

समवाय नित्य एवं अपृथक् सम्बन्ध है। संयोग अनित्य तथा पृथक्करणीय सम्बन्ध है। अतः समवाय को पदार्थ और संयोग को गुण माना गया है। समवाय नामक नित्य सम्बन्ध दो अयुतसिद्ध वस्तुओं में होता है। अयुतसिद्ध वस्तुयुगल में एक को दूसरी से पृथक् नहीं किया जा सकता तथा उनमें एक वस्तु आधार या आश्रय होती है एवं दूसरी आधार्य या आश्रित। द्रव्य और गुण में, द्रव्य और कर्म में, सामान्य और व्यक्ति में, नित्य द्रव्य और विशेष में, तथा अवयव और अवयवी में इस अयुतसिद्ध युगलपञ्चक में, समवाय सम्बन्ध होता है।[2]

९. अभाव

वैशेषिक-सूत्र और भाष्य में छह भावात्मक पदार्थों का वर्णन उपलब्ध है। स्वयं कणाद ने अभाव का वर्णन किया है, किन्तु उसे पदार्थ नहीं माना। बाद के वैशेषिकों ने उसे पदार्थ के रूप में मान्यता दी। अभाव दो प्रकार का होता है—संसर्गाभाव (जिसमें दो वस्तुओं के सम्बन्ध का निषेध किया जाता है, जैसे क ख में नहीं है) और अन्योन्याभाव (दो वस्तुओं का परस्पर भेद, जैसे क ख नहीं है)। संसर्गाभाव तीन प्रकार का होता है—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव। अन्योन्याभाव एक ही प्रकार का होता है। इस प्रकार अभाव चार प्रकार का सिद्ध हुआ। प्रागभाव का अर्थ है उत्पत्ति के पूर्व कारण में कार्य का अभाव, जैसे उत्पत्ति के पूर्व घट का अभाव। यह अनादि और सान्त है। प्रध्वंसाभाव का अर्थ है विनाश के बाद उस वस्तु का अभाव, जैसे ध्वंस हो जाने के बाद घट का अभाव। यह सादि और अनन्त है। अत्यन्ताभाव त्रिकाल में अभाव है, जैसे शशशृङ्ग, आकाशकुसुम आदि का अभाव। यह अनादि और अनन्त है। अन्योन्याभाव का अर्थ है दो वस्तुओं का परस्पर भेद, जैसे घट पट नहीं है; घट में पटाभाव और पट में घटाभाव है। यह दो वस्तुओं के तादात्म्य का अभाव है। यह भी अनादि और अनन्त है। यदि प्रागभाव न हो तो सभी वस्तुयें अनादि हो जावेंगी। यदि प्रध्वंसाभाव न हो तो सभी वस्तुयें नित्य हो जावेंगी। यदि अत्यन्ताभाव न हो तो सभी वस्तुयें सदा और सर्वत्र विद्यमान रहेंगी। यदि अन्योन्याभाव न हो तो सब वस्तुयें अभिन्न हो जावेंगी।

१०. परमाणुकारणवाद

सांख्य के सत्कार्यवाद के विपरीत न्याय-वैशेषिक असत्-कार्यवाद को मानते हैं। कार्य

---

१. नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषास्त्वनन्ता एव।

२. अयुतसिद्धानामाधार्याधारभूतानां यः सम्बन्ध इह प्रत्ययहेतुः स समवायः।—प्रशस्तपादभाष्य
ययोर्द्वयोर्मध्ये एकमविनश्यद् अपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ; अवयवावयविनौ, गुणगुणिनौ, क्रियाक्रियावन्तौ, जातिव्यक्ती, विशेषनित्यद्रव्ये चेति।—तर्कसंग्रह

Scanned with CamScanner

उत्पत्ति-पूर्व असत् है, वह अपने कारण में विद्यमान नहीं रहता। कार्य नई उत्पत्ति है, नूतन सृष्टि है और उत्पत्ति से ही उसकी सत्ता का आरम्भ होता है। अतः असत्कार्यवाद को आरम्भवाद भी कहते हैं। वैशेषिक परमाणुओं को जगत्कारण मानते हैं। इस जगत् के सारे भौतिक पदार्थ सावयव और उत्पत्ति-विनाशशील हैं तथा नित्य परमाणुओं के विभिन्न संयोगों से बनते हैं। अतः पदार्थ की उत्पत्ति का अर्थ है परमाणु-संयोग और विनाश का अर्थ है परमाणु-संयोग-विभाग। सृष्टि के मूल तत्त्व परमाणु नित्य हैं। भौतिक पदार्थों के अवयवों का विभाजन किया जा सकता है और इन विभक्त अवयवों को पुनः अन्य अवयवों में विभक्त किया जा सकता है एवं अनवस्था दोष से बचने के लिये अन्तिम अवयवों को स्वयं में निरवयव और अविभाज्य मानना पड़ेगा। अतीन्द्रिय, निरवयव, अविभाज्य और नित्य भौतिक द्रव्य परमाणु हैं।

परमाणु चार प्रकार के हैं—पार्थिव, जलीय, तैजस और वायवीय। आकाश विभु, एक और नित्य है तथा परमाणुओं के संयोग और विभाग के लिये अवकाश प्रदान करता है। प्रत्येक नित्य परमाणु में अपना 'विशेष' होता है जो उसका नित्य और व्यावर्तक पदार्थ है। इसके अतिरिक्त परमाणुओं में गुण-भेद और संख्या-भेद भी होते हैं। वायु के परमाणु सूक्ष्मतम हैं जिनमें स्पर्शगुण रहता है। तैजस परमाणुओं में रूप और स्पर्श रहते हैं। जल के परमाणुओं में रस, रूप और स्पर्श गुण होते हैं। तथा पार्थिव परमाणुओं में गन्ध, रस, रूप और स्पर्श ये चारों गुण पाये जाते हैं। सावयव पदार्थों के गुण उनके निर्माणक परमाणुओं के गुणों से आते हैं। परमाणु अतीन्द्रिय, निरवयव, अविभाज्य और नित्य होते हैं। ये गोल या परिमण्डल होते हैं। ये स्वभावतः क्रियाशून्य और निःस्पन्द होते हैं। इनमें आद्यस्पन्दन या गति (जिससे भौतिक सृष्टि प्रारम्भ होती है) ईश्वर सञ्चालित 'अदृष्ट' से आती है। प्रत्येक संसारी आत्मा का अपना 'अदृष्ट' होता है जो उससे संयुक्त रहता है एवं जिसमें उसके धर्माधर्मरूप (शुभाशुभ रूप) कर्मसंस्कार सञ्चित रहते हैं। आत्मा के कर्मफल-भोग के लिये सृष्टि होती है क्योंकि आत्मा बिना शरीर, इन्द्रिय और मन के भोग नहीं कर सकता। प्रत्येक संसारी आत्मा के साथ मन संयुक्त रहता है। किन्तु भोगायतन शरीर और भोगसाधन इन्द्रियों के उत्पादार्थ भौतिक सृष्टि की आवश्यकता होती है। परमाणुओं में आद्य स्पन्दन होते ही एक परमाणु दूसरे परमाणु से जुड़ कर द्व्यणुक बन जाता है; सर्वप्रथम सारे परमाणु द्व्यणुकों में परिवर्तित हो जाते हैं और फिर इन द्व्यणुकों से सृष्टि-रचना होती है। तीन द्व्यणुकों से त्र्यणुक और चार त्र्यणुकों से चतुरणुक बनते हैं और इस प्रकार यह क्रम चलता है एवं स्थूल महाभूत आदि की उत्पत्ति होती है।

वैशेषिक परमाणुवाद जड़वाद या भौतिकवाद नहीं है, अपितु आध्यात्मिक वस्तुवाद है क्योंकि वैशेषिक को जड़ परमाणुओं के साथ, उनसे स्वतन्त्र आत्मद्रव्यों की सत्ता भी स्वीकार है तथा वैशेषिक कर्मवाद को, अदृष्ट को, ईश्वर को एवं सृष्टि में अन्तर्निहित नैतिक नियम को भी मानता है।

वैशेषिक परमाणुवाद का ल्यूसिपस और डिमॉक्रिटस के ग्रीक परमाणुवाद से इस बात में साम्य है कि दोनों के अनुसार परमाणु निरवयव, अविभाज्य, अतीन्द्रिय और नित्य भौतिक द्रव्य हैं तथा इस जड़ जगत् के उपादान कारण हैं। किन्तु इसके आगे दोनों में कोई साम्य

Scanned with CamScanner

नहीं है। ग्रीक परमाणुवादी परमाणुओं में केवल संख्याभेद मानते हैं, गुणभेद नहीं, जबकि वैशेषिक परमाणुओं में संख्याभेद और गुणभेद दोनों मानते हैं। ग्रीक मत में परमाणु स्वरूपतः सक्रिय एवं चल हैं; वैशेषिक मत में वे स्वतः निःस्पन्द या निष्क्रिय हैं तथा उनमें स्पन्द अदृष्ट से आता है। ग्रीक मत में आत्मा भी अणुओं से निर्मित है; वैशेषिक मत से आत्म-द्रव्य का स्वतन्त्र अस्तित्व है एवं वह अणुरूप न होकर विभु तथा नित्य है। ग्रीक मत जड़वाद या भौतिकवाद है; वैशेषिक मत आध्यात्मिक वस्तुवाद है।

११. ईश्वर

कणाद सूत्रों में ईश्वर का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। 'तद्वचन होने से वेद का प्रामाण्य है',[1] इस वैशेषिक सूत्र में 'तद्वचन' का अर्थ कुछ विद्वानों ने 'ईश्वरवचन' किया है। किन्तु 'तद्वचन' का अर्थ 'ऋषिवचन' भी हो सकता है। तथापि प्रशस्तपाद से लेकर बाद के सभी ग्रन्थकारों ने ईश्वर की सत्ता स्पष्ट रूप से स्वीकार की है एवं कुछ ने ईश्वर-सिद्धि के लिये प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। अतः वैशेषिक दर्शन के संस्थापक कणाद मुनि को अनीश्वरवादी नहीं कहा जा सकता। वैशेषिक के अनुसार वेद ईश्वर-वाक्य है। ईश्वर नित्य, सर्वज्ञ और पूर्व हैं। ईश्वर अचेतन अदृष्ट के सञ्चालक हैं। ईश्वर इस जगत् के निमित्तकारण और परमाणु उपादानकारण हैं। अनेक परमाणु और अनेक आत्मद्रव्य नित्य एवं स्वतन्त्र द्रव्यों के रूप में ईश्वर के साथ विराजमान हैं; ईश्वर इनको उत्पन्न नहीं करते क्योंकि नित्य होने से ये उत्पत्ति-विनाश-रहित हैं तथा ईश्वर के साथ आत्मद्रव्यों का भी कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। ईश्वर का कार्य, सर्ग के समय, अदृष्ट से गति लेकर परमाणुओं में आद्यस्पन्दन के रूप में सञ्चरित कर देना; और प्रलय के समय, इस गति का अवरोध करके वापस अदृष्ट में संक्रमित कर देना है।

१२. बन्धन और मोक्ष

बन्धन अविद्या से और मोक्ष विद्या से होता है। आत्मा, अविद्यावश, कर्म करता है; कर्म से धर्माधर्म-संस्कार अदृष्ट में सञ्चित होते रहते हैं तथा फलोन्मुख होने पर आत्मा के कर्मफलभोगार्थ सृष्टि उत्पन्न होती है। ईश्वर अदृष्ट से गति लेकर परमाणुओं में आद्यस्पन्दन के रूप में सञ्चरित कर देते हैं और सृष्टि-प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। आत्मा जब तक कर्म जाल में फँसा है। तब तक उसका बन्धन बना रहता है। ज्ञान द्वारा कर्म का विनाश कर देने पर नये कर्म उत्पन्न नहीं होते, तथा सञ्चित एवं प्रारब्ध कर्मों का क्षय होने पर आत्मा का शरीर, इन्द्रियाँ और मन से आत्यन्तिक वियोग हो जाता है तथा आत्मा अपने शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है। यह मोक्ष है जहाँ समस्त दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। वैशेषिक के अनुसार आत्मा अन्य द्रव्यों के समान एक द्रव्य है और ज्ञान, सुख, दुःख आदि उसके आगन्तुक गुण हैं जो विषयों से सम्पर्क होने पर आत्मा में उत्पन्न होते हैं। आत्मा का बाह्य पदार्थों या मानस भावों से सम्पर्क मन और इन्द्रियों के द्वारा या केवल मन द्वारा होता है। इन्द्रियाँ स्थूल शरीर में रहती हैं। अतः आत्मा शरीरेन्द्रियमनःसंयुक्त होने पर ही

---

१. तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। वैशेषिक सूत्र १,१,३, और १०, २, ९

Scanned with CamScanner

बाह्य विषयों के सम्पर्क में आ सकता है। मोक्ष में आत्मा शरीर, इन्द्रिय और मन से सर्वथा वियुक्त हो जाता है, अतः मोक्ष में, विषय-सम्पर्क के अभाव में, आत्मा में ज्ञान, सुख, दुःख आदि कोई गुण उत्पन्न नहीं हो सकता। मोक्ष में दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति के साथ ही ज्ञान और सुख की भी निवृत्ति हो जाती है। मोक्ष में आत्मा अपने 'विशेष' सहित नित्य द्रव्य के रूप में स्थित रहता है, जहाँ न ज्ञान है, न सुख है, न इच्छा है, न संकल्प है। मुक्त आत्मा में और अचेतन शिलाखण्ड या शुष्क काष्ठफलक में कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता। यह आत्मा को भौतिक द्रव्य के स्तर पर, ज्ञेय और विषय के स्तर पर, उतार देने का सहज परिणाम है।

१३. समीक्षा

वैशेषिक-दर्शन में पदार्थों का वर्गीकरण प्रस्तुत हुआ है। उनमें समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न दृष्टिगोचर नहीं होता। वैशेषिक बहुत्ववादी तथा अध्यात्मवादी वस्तुवाद है जिसमें कई अन्तर्विरोध हैं। वैशेषिक का पदार्थ-वर्गीकरण तथा परमाणुकारणवाद भौतिकवाद एवं क्षणिकवाद से श्रेष्ठ है तथा भारतीय दर्शन के विकास-क्रम में एक महत्त्वपूर्ण स्तर है, यद्यपि यह चरम विकास से काफी दूर है।

वैशेषिक सात पदार्थों को वस्तु-सत् मानता है। गुण और कर्म द्रव्य पर आश्रित होने से स्वतन्त्र सत् नहीं हो सकते। सामान्य व्यक्ति-सापेक्ष है; विशेष नित्य-द्रव्य-सापेक्ष है; समवाय सम्बन्ध होने से वस्तु-द्वय-सापेक्ष है। अतः सामान्य, विशेष और समवाय, सापेक्ष तथा प्रत्ययाधीन होने के कारण, वस्तु-सत् नहीं हो सकते। अभाव तो स्पष्ट ही भाव-सापेक्ष है। अतः स्वतन्त्र और वस्तु-सत् पदार्थ के रूप में केवल द्रव्य ही रह जाता है। यह द्रव्य भी गुण तथा सम्बन्ध के कारण सत् प्रतीत होता है, निर्गुण तथा सम्बन्धशून्य द्रव्य की प्रतीति नहीं होती। यह भी वस्तु-सत् नहीं है। पुनः, वैशेषिक नौ द्रव्यों को मानता है। इनमें आकाश की कल्पना परमाणुओं के परस्पर संयोग-विभाग का माध्यम बनने के लिए एवं शब्दगुण का आश्रय बनने के लिये की गई है। दिक् और काल बाह्य वस्तु नहीं हैं। ये इन्द्रिय सम्वेदन और बुद्धि-विकल्प भी नहीं हैं। शुद्ध निर्विकल्प सम्वेदन हैं एवं हमारे लौकिक अनुभव के द्वार हैं। ये व्यक्तिगत नहीं हैं, किन्तु वस्तु-सत् भी नहीं हैं। मन अन्तरिन्द्रिय है। इस प्रकार द्रव्यों में चार भूतों के परमाणु और आत्मा बच रहते हैं। परमाणुओं में गुणभेद करना उचित नहीं है। अतः तत्त्वों का विभाग भौतिक परमाणु तथा आध्यात्मिक आत्मतत्त्व के रूप में करना चाहिये था। इस अर्थ में जैन मत तथा सांख्य मत वैशेषिक मत से श्रेष्ठ हैं क्योंकि उन्होंने समस्त भौतिक पदार्थों को 'पुद्गल' या 'प्रकृति' में समाविष्ट कर दिया है एवं उनका आत्मस्वरूपनिरूपण भी वैशेषिक के निरूपण से कहीं श्रेष्ठ है।

वैशेषिक के अनुसार समवाय को नित्य अपृथक् सम्बन्ध माना गया है। किन्तु यह सम्बन्ध एकाङ्गी है। द्रव्य-गुणसम्बन्ध में गुण द्रव्य के बिना नहीं रह सकते, किन्तु द्रव्य गुणों के बिना रह सकता है। अयुतसिद्ध में आश्रितवस्तु आश्रयवस्तु से पृथक् नहीं हो सकती, किन्तु आश्रयवस्तु आश्रितवस्तु के बिना भी रह सकती है। पुनश्च, संयोग को गुण और समवाय को पदार्थ मानना भी उचित नहीं है। और फिर समवाय सम्बन्ध ही सिद्ध नहीं हो

Scanned with CamScanner

सकता। समवाय जिन दो वस्तुओं को जोड़ता है उनमें से किस वस्तु में रहता है? यदि प्रथम वस्तु में रहे तो वह इसे द्वितीय वस्तु से नहीं जोड़ सकता, यदि द्वितीय वस्तु में रहे तो वह इसे प्रथम वस्तु से नहीं जोड़ सकता। समवाय एक है अतः वह दोनों वस्तुओं में एक साथ नहीं रह सकता। और यदि समवाय को वस्तु-युगल से भिन्न माना जाय, तो वह सम्बन्ध न रह कर स्वयं तीसरी वस्तु बन जायगा और इस तीसरी वस्तु रूप समवाय को दोनों वस्तुओं से सम्बद्ध करने के लिये एक अन्य समवाय की आवश्यकता होगी एवं इस प्रकार अनवस्था दोष आयगा। अतः समवायसम्बन्ध सिद्ध नहीं होता।

वैशेषिक का परमाणुवाद भी दोषपूर्ण है। परमाणुओं में गुणभेद सिद्ध नहीं होता। यदि परमाणुओं के गन्ध, रस, रूप, स्पर्श गुण नित्य हैं तो आत्मा के ज्ञान, सुख आदि गुण नित्य क्यों नहीं हो सकते? यदि कारण अपने गुणों को कार्य में सञ्चरित करता है तो परमाणु अपने परमाणुत्व को द्व्यणुक, त्र्यणुक आदि में क्यों नहीं सञ्चरित करता? और यदि सञ्चरित करे तो संघात भी परमाणुवत् अतीन्द्रिय और नित्य होगा। पुनश्च परमाणुओं से सृष्टि नहीं हो सकती। यदि परमाणु स्वभाव से निष्क्रिय हैं तो सर्ग सम्भव नहीं; यदि सक्रिय हैं तो प्रलय सम्भव नहीं। और यदि परमाणुओं में क्रिया अदृष्ट से आती है तो अदृष्ट सदा विद्यमान रहने से सृष्टि सदा ही होनी चाहिये और तब प्रलय नहीं होगा तथा परमाणु अपने स्वरूप में स्थित नहीं रह सकेंगे। यदि सृष्टि ईश्वरेच्छा से हो तो वह कर्मसंस्कारों से नियन्त्रित नहीं रहेगी और तब, आत्मा के कर्मफलभोगार्थ सृष्टि होती है, इस सिद्धान्त पर आँच आयेगी। अतः परमाणुकारणवाद सिद्ध नहीं होता।

आत्मा को भौतिक द्रव्यों के समान द्रव्य मानना और ज्ञान को उसका आगन्तुक गुण मानना अत्यन्त दोषपूर्ण तथा हेय कल्पना है। यह आत्मा को भौतिक द्रव्य के धरातल पर उतार देना है और उसे ज्ञेय और विषय बना देना है। आत्मा स्वरूपतः अचेतन द्रव्य है और मन, इन्द्रिय, शरीर से संयुक्त होने पर विषयों के सम्पर्क में आने पर ही उसमें ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, यत्न आदि गुण उत्पन्न होते हैं। चार्वाक मत को छोड़कर जो आत्मा को जीवित शरीर से भिन्न तत्त्व नहीं मानता तथा चैतन्य को महाभूतजन्य स्वीकार करता है, वैशेषिक मत की आत्मद्रव्यकल्पना भारतीय दर्शन में आत्मा के स्वरूप की निकृष्टतम कल्पना है। हीनयान बौद्ध मत ने भी जिसने आत्मा को क्षणिक विज्ञानप्रवाह मात्र माना है, स्वप्रकाश ज्ञान के स्पन्दन को स्वीकार किया है।

वैशेषिक मत में ईश्वर की कल्पना भी दोषपूर्ण है। ईश्वर इस विश्व का कर्ता, धर्ता, हर्ता, नियन्ता नहीं है। असंख्य नित्य परमाणु एवं असंख्य नित्य आत्मद्रव्य सदा स्वतन्त्र रूप से नित्य ईश्वर के साथ विराजमान रहते हैं। यद्यपि ईश्वर को सृष्टि का निमित्तकारण माना गया है, तथापि वस्तुतः यह निमित्त कारण अदृष्ट ही है। बिना अदृष्ट की सहायता के ईश्वर परमाणुओं में गतिसञ्चार नहीं कर सकता। ईश्वर का स्तर अदृष्ट के सञ्चालक का है। उनका कार्य, सृष्टि के समय, अदृष्ट से गति लेकर परमाणुओं में सञ्चरित कर देना, और प्रलय के समय, उस गति को अवरुद्ध करके पुनः अदृष्ट में स्थानान्तरित कर देना है। वैशेषिक दर्शन ने परमाणुओं, आत्माओं और ईश्वर में केवल बाह्य सम्बन्ध माना है। मुक्त आत्माओं का भी ईश्वर से कोई सम्पर्क नहीं है; सम्पर्क का ज्ञान भी नहीं उठता क्योंकि मुक्त आत्मा

Scanned with CamScanner

तो स्वयं ही जड़वत् है। ईश्वर को परम आत्मा माना है। यदि आत्मा स्वरूपतः अचेतन है और विषय-सम्पर्क से ही उसमें ज्ञानादि गुणों का उदय होता है, तो ईश्वर को भी अचेतन होना चाहिए और तब वे अदृष्ट के सञ्चालक भी नहीं हो सकते। और यदि ईश्वर में ज्ञानादिगुण हैं तो उनको बद्ध मानना पड़ेगा और मन, इन्द्रिय, शरीर से सम्पृक्त स्वीकार करना होगा। और यदि ईश्वर को, परम आत्मतत्त्व के रूप में, स्वरूपतः सर्वज्ञ और इच्छाशक्तिसम्पन्न एवं ऐश्वर्यसम्पन्न माना जाय, तो मुक्त आत्माओं ने क्या अपराध किया है कि उन्हें ज्ञान से भी वञ्चित किया जाय!

वैशेषिक सम्मत मोक्ष की कल्पना के दोष हम ऊपर बता चुके हैं। यदि मुक्त आत्मा में ज्ञान एवं आनन्द का सर्वथा अभाव है और वह अचेतन द्रव्य के समान है तो ऐसी मुक्ति किसे अभीष्ट होगी? कौन शिलाखण्ड या शुष्ककाष्ठफलक बनने के लिये मुक्त होना चाहेगा? एक वैष्णव भक्त का कथन है कि वैशेषिक की मुक्ति की अपेक्षा भगवान् कृष्ण की पदरज से पवित्र रम्य वृन्दावन में शृगाल बन कर जीना अधिक अच्छा है।[1] श्रीहर्ष ने वैशेषिक दर्शन को 'औलूक दर्शन' कहा है; औलूक कणाद का नाम भी है और इसका अर्थ उल्लुओं का दर्शन भी है।

Scanned with CamScanner